

गुरुर्दीपो गुरुर्बन्धु-गुरुः संसारतारकः। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन समाराध्यो गुरुर्बुधैः ॥१७॥
ततो राजा तदासक्तो समागत्य तदन्तिकम्। तस्याः शरीरमालोक्य कुष्टकालाग्निपीडितम् ॥१८॥
संसारदेहभोगेषु विरक्तः सुरतः सुधीः। दीक्षामादाय जैनेन्द्रीं मुनिर्जातो जगद्धितः ॥१९॥
सापि मृत्वा सती नाम्नी दीर्घसंसारमाश्रिता। स्वकीयपुण्यपापस्य फलं भुङ्क्ते जनो ध्रुवम् ॥२०॥

मत्वेति संसृतिचरित्रविचित्रमुच्चैः श्रीमज्जिनेन्द्रकथिते भुवि सारधर्मे।

स्वर्गापवर्गसुखसाधनहेतुभूते कार्या मतिर्बुधजनैः सततं सुखाप्त्यै ॥२१॥

इति कथाकोशे श्रीसुरतराज्ञः कथा समाप्ता।

३४. विषयलुब्धसंसारिजीवस्य कथा

श्रीसर्वज्ञं प्रणम्योच्चैः संसाराम्भोधितारणम्। वक्ष्ये संसारिजीवस्य वृत्तं स्तोकेन दारुणम् ॥१॥
महाटव्यां नरः कोपि भीतो व्याघ्राद्भयानकात्। अन्धकूपे स्थितस्तत्र तृणस्तम्बे विलम्बितः ॥२॥
तथा व्याघ्राहतोत्तुङ्गकूपवृक्षप्रकम्पनात्। प्रोच्छलन्मधुकक्रूरमक्षिकाभिः प्रपीडितः ॥३॥

बताने वाले हैं, वे निन्दा करने योग्य कैसे हों? और ये ही गुरु अज्ञानान्धकार को नष्ट करते हैं इसलिए दीपक हैं, सबका हित करते हैं इसलिए बन्धु हैं और संसाररूपी समुद्र से पार कराते हैं इसलिए कर्मशील खेवटिया हैं। अतः हर प्रयत्न द्वारा इनकी आराधना, सेवा-सुश्रूषा करते रहना चाहिए ॥१४-१७॥

जब राजा मुनिराजों को आहार देकर निवृत्त हुए तब अपनी प्रिया के पास आ गए। आते ही जैसे उन्होंने रानी का काला और दुर्गन्धमय शरीर देखा वे बड़े अचंभे में पड़ गए। पूछने पर उन्हें उसका कारण मालूम हुआ। सुनकर वे बहुत खिन्न हुए। संसार, शरीर, भोग उन्हें अब अप्रिय जान पड़ने लगे। उन्हें अपनी रानी का मुनि-निन्दारूप घृणित कर्म देखकर बड़ा वैराग्य हुआ। वे उसी समय सब राज-पाट छोड़कर योगी बन गए और अपना तथा संसार का हित करने में उद्यमी बने ॥१८-१९॥

समय पाकर सती की मृत्यु हुई। अपने पाप के फल से वह संसाररूपी वन में घूमने लगी। सो ठीक ही है, अपने किए पुण्य या पाप का फल जीवों को भोगना ही पड़ता है। इस प्रकार संसार की विचित्र स्थिति जानकर आत्महित के चाहने वाले सत्पुरुषों को भगवान् के उपदेश किए पवित्र धर्म पर सदा विश्वास रखना चाहिए, जो कि स्वर्ग और मोक्ष के सुख का प्रधान कारण है ॥२०-२१॥

३४. विषयों में फँसे हुए संसारी जीव की कथा

संसार-समुद्र से पार करने वाले सर्वज्ञ भगवान् को नमस्कार कर संक्षेप से संसारी जीव की दशा दिखलाई जाती है, जो बहुत ही भयावनी है ॥१॥

कभी कोई मनुष्य एक भयंकर वन में जा पहुँचा। वहाँ वह एक विकराल सिंह को देखकर डर के मारे भागा। भागते-भागते अचानक वह एक गहरे कुँए में गिरा। गिरते हुए उसके हाथों में एक वृक्ष की जड़ें पड़ गईं उन्हें पकड़ कर वह लटक गया। वृक्ष पर शहद का एक छत्ता जमा था। सो इस मनुष्य के पीछे भागे आते हुए सिंह के धक्के से वृक्ष हिल गया। वृक्ष के हिल जाने से मधुमक्खियाँ

स्तम्बमूलेऽशितश्वेतमूषकाभ्यां निरन्तरम्। छेद्यमानोष्यधोभागे चतुस्सर्पेषु सत्सु च ॥४॥
 इत्यादिभूरिकष्टेषु स मूढो नष्टमानसः। प्राप्तास्यमधुबिन्दुश्च तदेवं वाञ्छति स्फुटम् ॥५॥
 अत्रान्तरे समागत्य जगौ कश्चित्खगो हि तम्। आगच्छ भो नभोयाने तिष्ठ त्वं शर्मदायिनि ॥६॥
 तदाकर्ण्य कुधीः सोपि कूपस्थो लम्पटोऽवदत्। मधुबिन्दुः समायाति यावन्मे मधुरो मुखे ॥७॥
 भव त्वं सुस्थिरस्तावदित्याकर्ण्य खगो गतः। विषयैर्विञ्चितो जीवो न कदाचिद्धिते रतः ॥८॥
 यथासौ पुरुषः कूपे संस्थितो मधुलम्पटः। समाहूतः खगेनापि न वेत्ति स्म निजं हितम् ॥९॥
 तथासौ विषयासक्तः प्राणी संसारकूपके। कालव्याघ्रादिभिर्नित्यं पीडितोपि प्रकष्टतः ॥१०॥
 बोधितो गुरुभिश्चापि लोकद्वयसुखप्रदैः। सन्मार्गं नैव जानाति पापतो भाविदुर्गतिः ॥११॥

उड़ गई और छत्ते से शहद की बूँदें टप-टप टपककर उस मनुष्य के मुँह में गिरने लगी। इधर कुँए में चार भयानक सर्प थे, सो वे उसे डसने के लिए मुँह बाय हुए फुफकार करने लगे और जिन जड़ों को यह अभागा मनुष्य पकड़े हुए था, उन्हें एक काला और एक सफेद ऐसे दो चूहे काट रहे थे। इस प्रकार के भयानक कष्ट में वह फँसा था, फिर भी उससे छुटकारा पाने का कुछ यत्न न कर वह मूर्ख स्वाद की लोलुपता से उन शहद की बूँदों के लोभ को नहीं रोक सका और उल्टा अधिक-अधिक उनकी इच्छा करने लगा। इसी समय जाता हुआ कोई विद्याधर उस ओर आ निकला। उस मनुष्य की ऐसी कष्टमय दशा देखकर उसे बड़ी दया आई। विद्याधर ने उससे कहा-भाई, आओ और इस वायुयान में बैठो। मैं तुम्हें निकाले लेता हूँ। इसके उत्तर में उस अभागे ने कहा-हाँ, जरा आप ठहरें, यह शहद की बूँद गिर रही है, मैं इसे लेकर ही निकलता हूँ। वह बूँद गिर गई विद्याधर ने फिर उससे आने को कहा। तब भी इसने वही उत्तर दिया कि हाँ यह बूँद आई जाती है, मैं अभी आया। गर्ज यह कि विद्याधर ने उसे बहुत समझाया, पर वह “हाँ इस गिरती हुई बूँद को लेकर आता हूँ” इसी आशा में फँसा रहा। लाचार होकर बेचारे विद्याधर को लौट जाना पड़ा। सच है, विषयों द्वारा ठगे गए जीवों की अपने हित की ओर कभी प्रीति नहीं होती ॥२-८॥

जैसे उस मनुष्य को उपकारी विद्याधर ने कुँए से निकालना चाहा, पर वह शहद की लोलुपता से अपने हित को नहीं जान सका, ठीक इसी तरह विषयों में फँसा हुआ जीव संसाररूपी कुँए में कालरूपी सिंह द्वारा अनेक प्रकार के कष्ट पा रहा है, उसकी वायुरूपी डाली को दिन-रात रूपी दो सफेद और काले चूहे काट रहे हैं, कुँए के चार सर्परूपी चार गतियाँ इसे डसने के लिए मुँह बाये खड़ी हैं और गुरु इसे हित का उपदेश दे रहे हैं; तब भी यह अपना हित न कर शहद की बूँदरूपी विषयों में लुब्ध हो रहा है और उनकी ही अधिक-अधिक इच्छा करता जाता है। सच तो यह है कि अभी इसे दुर्गतियों का दुःख बहुत भोगना है। इसीलिए सच्चे मार्ग की ओर इसकी दृष्टि नहीं जाती ॥९-११॥

इत्थं कष्टशतप्रदानचतुरे संसारघोराणवे ज्ञात्वा वै विषयान् विषान्नसदृशान्तान्दुर्जनान्वा भुवि ।
श्रीमत्सारजिनेन्द्रदेवगदितो धर्मः सुशर्मप्रदश्चित्ते निश्चलभावतो बुधजनैराराधनीयः सदा ॥१२॥
इति कथाकोशे विषयलुब्धसंसारिजीवस्य कथा समाप्ता ।

३५. चारुदत्तश्रेष्ठिनः कथा ।

श्रीजिनेन्द्रपदाम्भोज-युग्मं नत्वा सुरार्चितम् । श्रेष्ठिनश्चारुदत्तस्य चरित्रं रचयाम्यहम् ॥१॥
चम्पाख्ये नगरे राजा शूरसेनो महानभूत् । भानुनामाभवच्छ्रेष्ठी सुभद्रा श्रेष्ठिनी प्रिया ॥२॥
पुत्रार्थिनी कुदेवानां सा करोति स्म सेवनम् । श्रेष्ठिनी न सुतं लेभे नास्ति सिद्धिः कुदेवतः ॥३॥
एकदा श्रीजिनेन्द्राणां मन्दिरे शर्ममन्दिरे । नत्वा चारणयोगीन्द्रं सा सुभद्रा जगाद च ॥४॥
ब्रूहि भो भगवन्मेऽत्र तपोलक्ष्मीर्भविष्यति । नैवं वेति समाकर्ण्य मुनीन्द्रो ज्ञानलोचनः ॥५॥
ज्ञात्वा तस्या मनोभावं जगौ भो पुत्रि साम्प्रतम् । मिथ्यादेवस्य सेवां च कृत्वा सम्यक्त्वहानिताम् ॥६॥

इस प्रकार यह संसाररूपी भयंकर समुद्र अत्यन्त दुःखों का देने वाला है और विषयभोग विष मिले भोजन या दुर्जनों के समान कष्ट देने वाले हैं । इस प्रकार संसार की स्थिति देखकर बुद्धिमानों को जिनेन्द्र भगवान् के उपदेश किए हुए पवित्र धर्म को, जो कि अविनाशी, अनन्तसुख का देने वाला है, स्थिर भावों के साथ हृदय में धारण करना उचित है ॥१२॥

३५. चारुदत्त सेठ की कथा

देवों द्वारा पूजा किए गए जिनेन्द्र भगवान् के चरण कमलों को नमस्कार कर चारुदत्त सेठ की कथा लिखी जाती है ॥१॥

जिस समय की यह कथा है, तब चम्पापुरी का राजा शूरसेन था । राजा बड़ा बुद्धिमान् और प्रजाहितैषी था । उसके नीतिमय शासन की सारी प्रजा एक स्वर से प्रशंसा करती थी । यही एक इज्जतदार भानुदत्त सेठ रहता था । इसकी स्त्री का नाम सुभद्रा था । सुभद्रा के कोई सन्तान नहीं हुई, इसलिए वह सन्तान प्राप्ति की इच्छा से नाना प्रकार के देवी-देवताओं की पूजा किया करती थी, अनेक प्रकार की मान्यताएँ लिया करती थी परन्तु तब भी उसका मनोरथ नहीं फला । सच तो है, कहीं कुदेवों की पूजा-स्तुति से कभी कार्य सिद्ध हुआ है क्या? एक दिन जब वह भगवान् के दर्शन करने को मन्दिर गई तब वहाँ उसने एक चारण मुनि देखे । उन्हें नमस्कार कर उसने पूछा-प्रभो, क्या मेरा मनोरथ भी कभी पूर्ण होगा? मुनिराज उसके हृदय के भावों को जानकर बोले-पुत्री, इस समय तू जिस इच्छा से दिन-रात कुदेवों की पूजा-मानता किया करती है, वह ठीक नहीं है । उससे लाभ की जगह उल्टी हानि हो रही है । तू इस प्रकार की पूजा मानता द्वारा अपने सम्यक्त्व को नष्ट मत कर । तू विश्वास कर कि संसार में अपने पुण्य-पाप के सिवा और कोई देवी-देवता किसी को कुछ देने-लेने में समर्थ नहीं । अब तक तेरे पाप का उदय था, इसलिए तेरी इच्छा पूरी न हो सकी । पर अब तेरे महान् पुण्यकर्म का